Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Vol. 1, Issue 1- 2016

योग दर्शन में अथ शब्द का वाच्यार्थ विमर्श

डॉ0 अनीता राजपाल*

योगदर्शन का प्रथम सूत्र है-''अथ योगानुशासनम्''। अमरकोश में ''अथ'' शब्द के पाँच अर्थ दिए है- अधिकार (प्रारम्भ), अनन्तर, मंगल, प्रश्न और पूर्णता।[1] योगदर्शन के इस प्रथम सूत्र में 'अथ' शब्द का प्रयोग अधिकार अर्थ में हुआ है। महर्षि पंतजलि न किसी से कोई प्रश्न पूछना चाहते है और न ही सम्पूर्ण योगशास्त्र का प्रतिपादन कर रहे है। अतः 'अथ' शब्द प्रश्न और पूर्णता का वाचक नहीं हो सकता। अथ शब्द के शेष 'मंगल' और 'अनन्तर' ये दो अन्य अर्थ भी है फिर एक ही अर्थ मानकर अन्य अर्थों की सम्भावना का निषेध क्यों किया गया? पूर्वपक्ष की इसी शंका को उपस्थापित करके वाचस्पति मिश्र ने 'योगसूत्र' की 'तत्त्ववैशारदी' टीका में तथा माधवाचार्य ने 'सर्वदर्शनसंग्रह' में समाधान किया है।

अथ शब्द का आनन्तर्य अर्थ-विषयक विचार

शंका-पूर्वपक्ष का कथन है कि ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' इस ब्रह्मसूत्र में 'अथ' शब्द अनन्तर अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मसूत्र के अधिकारी के लिए शमादि षट्क सम्पति से युक्त होने के अनन्तर ही शिष्य गुरु के समक्ष ब्रह्मविषयक जिज्ञासा रखता है। अतः योगदर्शन में भी अथ से पूर्व शमादि क्यों नहीं हो सकते? पूर्वपक्ष की इस शंका में योगाचार्य यह प्रश्न पूछता है कि ''यदि 'अथ' शब्द का वाच्यार्थ 'अनन्तर' मानने तो क्या जिस किसी भी आचार का पूर्व में होना आवश्यक होगा अथवा शमादि के अनन्तर योगशास्त्र में प्रवृत्ति होती है?''

समाधान-''न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'' अर्थात् ''कोई भी मनुष्य कर्म न करते हुए एक क्षण भी नहीं ठहर सकता'' गीता[2] के इस वचन के अनुसार "प्रथम विकल्प अनुपयोगी होने से त्याज्य है, क्योंकि मनुष्य निरन्तर कोई न कोई कर्म करता रहता है। एक कर्म करने के पश्चात् दूसरा कर्म करना प्रारम्भ कर देता है।

द्वितीय विकल्प भी ग्राह्य नहीं है। यद्यपि शमादि के पश्चात् योग में प्रवृत्ति होती है तथापि यह योग अनुशासन की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है क्योकि शब्द की दृष्टि से योग शब्द प्रधान नहीं है।"[3] अभिप्राय यह है कि योगानुशासन'' शब्द में तत्पुरुष समास है। तत्पुरुष समास में उत्तर पद प्रधान होता है। ''योगस्य अनुशासनम्'' इस तत्पुरुष समास में 'अनुशासन' पद प्रधान हुआ। अतः 'अथ' शब्द का सम्बन्ध अनुशासन (शास्त्र) से होगा, अप्रधान योग से नहीं।

इसलिए 'अथ' शब्द का अर्थ अनन्तर करने पर 'शमादि के पश्चात्' नहीं किया जा सकता, क्योंकि शमादि का सम्बन्ध योग के साथ है।

*एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग, हिन्दू-महाविद्यालय, दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली।
Correspondence E-mail Id: editor@eurekajournals.com

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

शमादि के बाद योग किया जाता है। शमादि के बाद शास्त्र का आरम्भ नहीं किया जाता है। अतः अथ का सम्बन्ध अनुशासन के साथ है।

शंका-समास की दृष्टि से "योगानुशासन में 'अनुशासन' प्रधान शब्द है, उसे ही शमादि के बाद रखकर 'अथ' शब्द का अर्थ क्यों न करें?

समाधान-अनु उपसर्ग शास् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर अनुशासन शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है योग से अनुशिष्ट शास्त्र। इस प्रकार योगानुशासन का अर्थ हुआ योगशास्त्र का आरम्भ। जिस शास्त्र के द्वारा योग के लक्षण, भेद, उपाय और फल की व्याख्या की जाए वहीं अनुशासन है। यथा समाधि पाद में योग का लक्षण, सम्प्रज्ञातादि योग-भेदों का तथा साधना पाद में योग के उपाय तथा कैवल्य पाद में योग को फल (मोक्ष) का विवेचन किया गया है।"[4]

शंका-अनुशासन का अर्थ शास्त्र होने पर भी शमादि के पश्चात् अनुशासन का अर्थ क्यों नहीं किया जा सकता?

समाधान-"अनुशासन (शास्त्र) तत्त्वज्ञान की इच्छा के बाद उत्पन्न होता है। शमादि के पश्चात् इच्छा उत्पन्न होती है, इसमें नियमाभाव है। अभिप्राय यह है कि शास्त्र-प्रवृत्ति के पश्चात् ही शमादि की सिद्धि हो सकती है। सर्वप्रथम शास्त्र-अध्ययन में व्यक्ति की प्रवृत्ति हो, फिर शास्त्राध्ययन से शास्त्र-ज्ञान तत्पश्चात् योग का अभ्यास, योगाभ्यास से शमदमादि की सिद्धि हो सकती है, उससे पूर्व नहीं। अतः शास्त्रारम्भ से पूर्व शमादि की सत्ता न होने से शमादि के अनन्तर योगशास्त्र का उपदेश नहीं हो सकता। अतः शमादि के पश्चात् योगशास्त्र में प्रवृत्ति सम्भव है, किन्तु शमादि के पश्चात् ही शास्त्र में प्रवृत्ति हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। जैसाकि बृहदारण्योपनिषद् में भी कहा गया है- ''तस्माच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत्''[5] अर्थात् शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु तथा समाहित चित्त होकर साधक 'स्व' (आत्मा) में ही आत्मतत्त्व को देखे।

शंका-सूत्रकार की तत्त्वप्रकाशन की इच्छा को ही पूर्व में मानकर अथ शब्द का आनन्तर्य अर्थ क्यों नहीं किया जा सकता?

समाधान-ऐसा अर्थ मानने पर योगविषयक ज्ञान न श्रोताओं के लिए उपयोगी होगा और न उनकी योग में प्रवृत्ति होगी। अतः शास्त्रकार की इच्छा के पश्चात् शास्त्र का निर्माण नहीं किया जा सकता।

शंका-योगानुशासन निःश्रेयस का कारण है अथवा नहीं?

समाधान-योगानुशासन निःश्रेयस का कारण है, ऐसा मानने पर तत्त्वज्ञान के प्रकाशन की इच्छा के अभाव में भी योगशास्त्र की उपयोगिता रहेगी। अतः इच्छा के अभाव में भी योगशास्त्र लिखना होगा। इस प्रकार योगानुशासन को मोक्ष का हेतु सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि तत्त्वप्रकाशनेच्छा और योगानुशासन में पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः व्यभिचार दोष के कारण यह पक्ष त्याज्य है।

योगानुशासन निःश्रेयस का कारण नहीं है, ऐसा मानने पर श्रुति प्रमाण ''अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति'' अर्थात् ''अध्यात्मयोग की प्राप्ति होने पर आत्मा का

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

साक्षात्कार करके धी पुरुष हर्ष और शोक दोनों का त्याग कर देता है'' तथा स्मृति प्रमाण ''जब तुम्हारी बुद्धि समाधि की अवस्था में आत्मा में स्थिर हो जायेगी तब तुम योग = आत्मसाक्षात्कार, को प्राप्त करोगे'' से यह सिद्ध होता है कि योग मोक्ष का कारण है। अतः नियमतः प्रकाशनेच्छा योगानुशासन की पूर्ववर्त्तिनी नहीं हो सकती।"[6]

शंका-पूर्वपक्ष का कथन है कि अन्य शास्त्रों में 'अथ' शब्द के आनन्तयार्थक के आधार पर 'योगानुशासन' तत् तत् कार्य के पश्चात् भी हो सकता है। जैसे -

1. "तपस्या में लीन रहने के पश्चात् ज्ञान की उत्पत्ति होने से कुछ शास्त्र लिखे गये, जैसे- पाणिनी शास्त्र।
2. शिष्यों के प्रश्न पूछे जाने के पश्चात् शास्त्रकारों की प्रवृत्ति से कुछ शास्त्र लिखे गये, जैसे-पाशुपतशास्त्र।
3. पारदादि के संयोग से बने रसायनों के सेवन के पश्चात् तत्त्वसाक्षात्कार का साक्षात्कार होने के पश्चात् पारदादि शास्त्र लिखे गये।"

इनमें से कोई भी कार्य योगानुशासन से पूर्व माना जा सकता है।

समाधान-वाचस्पति मिश्र का कहना है कि ''शिष्य के प्रश्न के पश्चात् शिष्य को ज्ञान कराने के लिए और उसमें शास्त्रविषयक प्रवृत्ति कराने के लिए आनन्तर्य का कोई उपयोग नहीं है। योगानुशासन के प्रामाणिक होने पर शिष्य के प्रश्न के बिना भी शास्त्र की उपादेयता बनी रहती है और शास्त्र के अप्रामाणिक होने पर शिष्य के प्रश्न का सद्भाव होते हुए भी शास्त्र त्याज्य है।''[7] अभिप्राय यह है कि शिष्य के प्रश्नादि के नियम से योगानुशासन की अनन्तरता नियमित नहीं की जा सकती है। शिष्य के प्रश्नादि के बिना भी आचार्य कभी-कभी शिष्य को तत्त्वज्ञान हो जाए इस करूणावश बिना प्रश्न के ही शास्त्र का उपदेश करते है। इस प्रकार शिष्य के प्रश्न के पश्चात् तत्त्वज्ञान और उसके प्रकाशन में पौर्वापर्य का खण्डन हो जाता है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि ''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'' इस वेदान्तसूत्र में 'अथ' शब्द को अधिकारार्थक नहीं माना जा सकता क्योंकि ब्रह्म की जिज्ञासा का आरम्भ नहीं किया जा सकता। अतः शंकराचार्य 'अथ' का अर्थ 'अनन्तर' करते है। किसके अनन्तर? 'अधिकारी बनने के बाद'। साधनचतुष्ट्य सम्पत्ति से युक्त होने के बाद ही ब्रह्म-जिज्ञासा का अधिकारी बनता है।

अथ शब्द अधिकार अर्थ में

माधवाचार्य का कहना है कि "अथ शब्द के आनन्तर्यार्थक विषयक विभिन्न मत विमर्श के पश्चात् 'परिशेषात्' अथ शब्द अधिकार अर्थ में उपसंहृत किया गया है। जिस प्रकार ताण्ड्य-ब्राह्मण में 'अथैष ज्योतिः' अर्थात् 'अब यह ज्योति-यज्ञ है, अब यह विश्व ज्योति-यज्ञ है' यहाँ पर 'अथ' शब्द विशेष क्रतु (यज्ञ) को प्रारम्भ करने के अर्थ में किया गया है। उसी प्रकार 'अथ योगानुशासनम्' का 'अथ' शब्द योगशास्त्र का आरम्भार्थक शब्द है। "अथ शब्दानुशासनम्" में भी 'अथ' शब्द व्याकरणशास्त्र में आरम्भ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।"[8]

वाचस्पति मिश्र का कथन है कि "अथ' शब्द का अधिकार अर्थ करने पर योग का प्रतिपादन करना

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

सम्भव है। सम्पूर्ण शास्त्र के तात्पर्यार्थ की व्याख्या करने से शिष्य शास्त्र को सरलतापूर्वक समझ सकेगा तथा शास्त्र में प्रवृत्त हो पायेगा।"[9]

शंका-याज्ञवल्क्य-स्मृति में कहा गया है कि योग के उपदेष्टा हिरण्यगर्भ है, फिर महर्षि पतंजलि को योगशास्त्र का कर्त्ता क्यों कहा जाता है?

समाधान-पतंजलि ने योग का अनुशासन किया है, शासन नहीं। जैसाकि कि ''अथयोगानुशासनम्'' सूत्र से ध्वनित होता है। अभिप्राय यह है कि यद्यपि शास्त्र और अनुशासन शब्द पर्यायवाची है तथापि अनुशासन शब्द में अनु उपसर्ग का प्रयोग हुआ है। ''अनुशिष्यते इति अनुशासनम्'' अर्थात् उपदेश करने के बाद पुनः उसका उपदेश प्रारम्भ हो रहा है। अथवा ''शिष्टस्य शासनम् इत्यनुशासनम्'' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पहले से सिखाए गये विषय को सिखाने वाला शास्त्र अनुशासन है। अतः 'अथ योगानुशासनम्' इस सूत्र के द्वारा सूत्रकार ने शास्त्र के गुरुमूलक होने से शास्त्र की प्रमाणिकता को प्रदर्शित किया है। अतः ''हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः इति'' इस स्मृति के साथ विसंगति नहीं बैठती।

माधवाचार्य का कथन है कि ''महर्षि पतंजलि ने विष्णु-पुराण, गरुड-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण तथा लिंग-पुराण में यत्र-तत्र विकीर्ण योग के सारांश को ग्रहण करने की इच्छा से योग का अनुशासन अर्थात् पुराणादि के प्रथम प्रकाशन के पश्चात् उसका संकलन किया। किसी नये शासन = शास्त्र की रचना नहीं की है। अतः यह शासन नहीं अनुशासन है।''[10]

अथ का अधिकार अर्थ निश्चित किए जाने पर पुनः पूर्वपक्ष की शंका है कि-

शंका - "योग का प्रतिपादन किया जा रहा है। अतः योग ही अधिकृत है, न कि सम्पूर्ण योगशास्त्र।

समाधान-प्रतिपाद्यमान होने से योग ही अधिकृत हो रहा है, तथापि योग का प्रतिपादन शास्त्र रूप करण से होता है। व्याकरण का नियम यह है कि कर्त्ता क्रिया की सिद्धि के लिए करण पर आश्रित रहता है, न कि कर्म पर। इसी प्रकार 'कर्त्ता के व्यापार के प्रयोजन से योग विषयक शास्त्र अधिकृत हो रहा है'', यह समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार किसी वृक्ष को काटने के लिए व्यक्ति की हाथ को ऊपर उठाना, नीचे गिराना आदि क्रियाएँ हाथ में कुठार के होने पर ही सम्भव होती है। कुल्हाड़ी के न होने पर वृक्ष के विद्यमान होने पर भी ये क्रियाएँ सम्भव नहीं है। वस्तुतः सकर्मक क्रिया की सिद्धि के लिए साधन के साथ-साथ कर्म की भी आवश्यकता होती है। उसी प्रकार पतंजलि वक्ता का उपदेशरूप क्रिया (व्यापार) हो रहा है। जिसका विषय योग है। ऐसे करण स्वरूप शास्त्र के आरम्भ के लिए व्यापार की अपेक्षा है। इस प्रकार पतंजलि के उपदेश रूप व्यापार की अपेक्षा से योगविषयक शास्त्र की अधिकृतता समझनी चाहिए और शास्त्राभिधान व्यापार की अपेक्षा से योग की अधिकृतता समझनी चाहिए।"[11]

अथ शब्द मंगल का वाचक नही है

अथ शब्द के अधिकारार्थक होते हुए भी उसकी मंगलात्मकता को परिपुष्ट करते हुए माधवाचार्य कहते है कि "मनुष्य को सुख की प्राप्ति अथवा दुख की निवृत्ति की कामना ही अभीष्ट है। अभीष्ट और अनिन्दित वस्तु की प्राप्ति ही मंगल

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

है। योगानुशासन न सुखरूप और न दुख की निवृत्तिरूप है। अतः यह मंगल का वाचक नहीं है। जिस प्रकार मृदंग की ध्वनि का श्रवण मंगलकारी है, उसी प्रकार मंगल 'अथ' शब्द के भी श्रवण या उच्चारण का कार्य है।

अथ शब्द सुनने मात्र से ही मंगलकारी हो जाता है। जैसे 'दधि' तथा अन्य प्रयोजन के लिए ले जाया जाता हुआ जल से भरा घट यात्रा प्रसंग में दर्शनमात्र से मंगलदायक होते है, वैसे ही अथ शब्द के श्रवण अथवा स्मरण मात्र से मंगल होता है। उसी प्रकार इस सूत्र में अथ शब्द मंगल को प्रकट करता है। अतः मंगल 'अथ' शब्द का न वाच्यार्थ और न लक्ष्यार्थ हो सकता है।''[12]

सर्वदर्शनसंग्रहकार का कहना है कि ''जिस प्रकार अर्थापत्ति से ज्ञात अर्थ वाच्यार्थ के साथ अन्वित नहीं हो सकता उसी प्रकार मंगल का कार्य-अर्थ भी वाक्यार्थ में नहीं आ सकता, क्योंकि वाक्यार्थ का सम्बन्ध उसी के साथ होता है जो पद के अपने अर्थ के साथ होता है। नियम यह है कि ''शाब्दी ह्याकांक्षा शब्देनैव पूर्यत'' अर्थात् शब्द की आकांक्षा शब्द से ही पूरी होती है।''[13] अभिप्राय यह है कि ''पीनो देवदत्तो दिवा भुङ्क्ते'' इस वाक्य में रात्रि-भोजन आर्थिकार्थ = अर्थापत्ति से प्राप्त अर्थ है। इसी प्रकार मंगल अर्थ के उच्चारण से उत्पन्न होने वाला अर्थ कार्य-अर्थ है। ये दोनों पदार्थ नहीं है। इनका वाक्यार्थ में कोई महत्त्व नहीं है।

अतः 'अथ योगानुशासनम्' इस सूत्र में अथ का अर्थ मंगल लेने से योगानुशासन से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होगा। केवल 'योगानुशासनम्' वाक्य अपूर्ण है। अथ शब्द से वाक्य पूर्ण होता है।

शंका - "स्मृति में कहा गया है कि ''ओम्' और 'अथ' शब्द ब्रह्मा के कंठ से निकले है। इसलिए ये दोनों मांगलिक है। पाणिनी की अष्टाध्यायी के प्रथम सूत्र 'वृद्धिरादैच' के समान अथ शब्द मंगल के अर्थ में क्यों नहीं हो सकता?

समाधान-'वृद्धि' अष्टाध्यायी की एक संज्ञा है। संज्ञा का बोध होने के साथ-साथ इस शब्द के उच्चारण से मंगल होता है। अतः इस शब्द से दो प्रयोजन सिद्ध होते है। उसी प्रकार 'अथ योगानुशासनम्' सूत्र में अथ शब्द का वाच्यार्थ मंगल नहीं है, वरन् इसका श्रवण मंगलदायक है।"[14]

योगवार्त्तिक के अनुसार "अथ शब्द अधिकार अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकार शब्द योगरूढ़ि से 'आरम्भ' अथ में ही मुख्य है। अतः शास्त्र का आरम्भ ही मुख्य है।"[15]

निष्कर्ष

इस प्रकार ''अथ'' शब्द के अनेक अर्थ होते हुए भी योग-दर्शन में यह शब्द अधिकार = आरम्भ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वेदान्त दर्शन के समान योगशास्त्र के अधिकारी के लिए शमादि से युक्त होना आवश्यक नहीं है। अतः अथ शब्द शमादि के अनन्तर का वाचक नहीं है। अथ शब्द मंगल का वाचक अथवा लक्ष्यार्थ कथमपि नहीं हो सकता। शास्त्र के प्रारम्भ में अथ शब्द का श्रवण मंगलदायक हो सकता है। योगशास्त्र के आदि प्रवक्ता ''हिरण्यगर्भ'' माने गये है। महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र का पुनः उपदेश किया है। अतः योगशास्त्र पतंजलि का शासन नहीं अनुशासन है।

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.

सन्दर्भ-सूची

1. मंगलानन्तराम्भप्रश्नकात्स्न्यनेष्वथो अथ।-अमरकोश, 3.3.246
2. गीता, 3.8
3. न चरमः। शमाद्यनन्तरं योगस्य प्रवृत्तावपि तस्यानुशासनप्रवृत्त्यनुबन्धत्वेनोपात्ततया शब्दतः प्राधान्याभावात्।-सर्वदर्शनसंग्रह, सं० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984, पातंजलदर्शन, पृ० 562, तत्त्ववैशारदी,1.1
4. अनुशिष्यते व्याख्यायते लक्षणभेदोपायफल-सहितो योगो येन तदनुशासनमिति व्युत्पत्तेः।-सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 563 (क) अनुशासनमिति हि शास्त्रमाहानुशिष्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या।-तत्त्ववैशारदी 1.1. (ख) योगानुशासनं नाम शास्त्रं तद्द्वारा योगोऽपीत्यर्थः।-योगभाष्य 1.1.
5. बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.23.
6. तवापि निःश्रेयसहेतुतया योगानुशासनं न वा। आद्ये तदभावेऽपि उपादेयत्वं भवेत्। द्वितीये तदभावेऽपि हेयत्वं भवेत्।-सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 564, काठकोपनिषद् 2.12, गीता 2.53.
7. तत्त्ववैशारदी 1.1, सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 564.
8. सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 562, ताण्ड्य ब्राह्मण 16.8.1.
9. अधिकारार्थत्वे शास्त्रेणाधिक्रियमाणस्य प्रवर्ति-तश्च भवतीति।-तत्त्ववैशारदी, 1.1.
10. विष्णुपुराण, 6.7, गरुडपुराण, 14.49, मार्कण्डेयपुराण, 39, लिंगपुराण 9, सर्वदर्शन संग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 570.
11. करणगोचरश्च शास्त्रव्यापारगोचरतया तु योग एवाधिकृत इति भावः।-तत्त्ववैशारदी, 1.1.
12. नीयमानोदकुम्भदर्शनमिव श्रवणं मंगलायापि कल्पत इति मन्तव्यम्।-सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 566-67, तत्त्ववैशारदी 1.1.
13. यथार्थिकार्थो वाक्यार्थे न निविशते तथा न कार्यमपि निविशेत। अपदार्थत्वाविशेषात्।-सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 567.
14. अष्टाध्यायी 1.1.1, सर्वदर्शनसंग्रह, पातंजलदर्शन, पृ० 568.
15. अधिकारशब्दो योगरूढ़तया आरम्भण एव मुख्य इति शास्त्रस्याधिकार्यत्वं मुख्यमेवास्ति।-योगवार्त्तिक 1.1.

Published on: 19th-April-2016

© Eureka Journals 2016. All Rights Reserved.